ध्यान एवं आश्रम जीवन

श्री स्वामी कृष्णानन्द



ध्यान एवं आश्रम जीवन

'Meditation and Ashram Life' पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद

श्री स्वामी कृष्णानन्द

अनुवादिका :
स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय : शिवानन्दनगर—२४९१९२
जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम हिन्दी संस्करण : २०२६
(२,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी अद्वैतानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फॉरेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल,
उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' में मुद्रित।
For online orders and catalogue visit: dlsbooks.org

ध्यान एवं आश्रम जीवन

इस विषय में विचार करने का यह सर्वाधिक उचित समय है कि हमें 'ध्यान' शब्द के वास्तविक अभिप्राय को ही ग्रहण करना है, इसे एक प्रकार का विषयान्तर अथवा हास्यप्रद बात (Joke) नहीं मानना है। हम इस शब्द 'ध्यान' को इतनी अधिक बार सुन चुके हैं, अनेकों स्थानों में उद्घोषित एवं प्रकाशित देख चुके हैं कि इस बात की पूरी सम्भावना है कि यह शब्द अपनी अर्थवत्ता एवं महत्ता को ही खो दे; इससे हमारी तथा उन सब लोगों की ही हानि होगी, जो इसका प्रचार-प्रसार करते हैं। यह स्थिति अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है।

हम स्वयं को आध्यात्मिक साधक घोषित नहीं करते हैं, अपितु हम सब साधक बनने हेतु विनम्रतापूर्वक आकांक्षा करते हैं। मैं ऐसा मानता हूँ कि इस आश्रम में वास करने वाले हममें से प्रत्येक की यही हार्दिक अभिलाषा है। क्योंकि, अपने स्वभाव के अनेकों दोषों-दुर्बलताओं के कारण, हम विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकते हैं कि हम सच्चे साधक हैं, परन्तु हम यह भी अस्वीकार नहीं कर सकते हैं कि हम सच्चे साधक बनने के लिए विनम्रतापूर्वक इच्छा करते हैं। इसलिए, हम यह जानना चाहेंगे कि आध्यात्मिक जीवन क्या है, उन श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज की आशाओं एवं उपदेशों के अनुरूप एक सच्चा आध्यात्मिक जीवन जीने हेतु हमें क्या प्रयास करने चाहिए; जिनका पावन नाम हम कभी विस्मृत नहीं कर सकते हैं, जिनका अन्न-प्रसाद हम खाते हैं, जिनके वैभव का हम आनन्द उठाते हैं तथा जिनकी उज्ज्वल कृपा-दीप्ति से हम भीतर एवं बाहर से निरन्तर ओत-प्रोत रहते हैं। जिन व्यक्तियों ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया है, उनके लिए यह सर्वाधिक उचित, उपयुक्त एवं अनिवार्य होगा कि वे उनके दिव्य आदर्शों का अभ्यास करके तथा जिस प्रकार के जीवन की वे हमसे आशा-अपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करके उनके यश एवं महिमा में वृद्धि करें।

हमें यह स्मरण करना चाहिए कि हम यहाँ क्यों आये हैं? चार अथवा पाँच प्रकार के व्यक्ति आश्रम आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति समान उद्देश्य अथवा लक्ष्य के साथ यहाँ नहीं आता है। कुछ व्यक्ति केवल जिज्ञासा–उत्सुकतावश यहाँ आते हैं; कुछ अन्य व्यक्ति संसार से त्रस्त–सन्तप्त होकर यहाँ आते हैं; कुछ अन्य ज्ञान, विद्वता एवं बौद्धिक प्रखरता की प्राप्ति के लिए आते हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं जो यहाँ जीविकोपार्जन का साधन अथवा नौकरी पाने हेतु आते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो स्वयं की आत्मा की खोज हेतु आते हैं। मैं आज विशेषतया इन्हीं व्यक्तियों के सन्दर्भ में बात कर रहा हूँ, अन्य चार प्रकार के व्यक्तियों के लिए नहीं। जो अपनी आत्मा की खोज के लिए यहाँ आये हैं क्योंकि उन्होंने इसे खो दिया है, ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम है, परन्तु इन्हीं व्यक्तियों के लिए ध्यान के विषय में यह चर्चा की जा रही है तथा यह इनके लिए ही प्रयोज्य है, उपयुक्त है। यह अन्य व्यक्तियों के लिए प्रयोज्य नहीं है।

ध्यान, आत्मा की क्रिया है, यह मन की क्रिया नहीं है, इसलिए हम समझ सकते हैं कि यह हमारे व्यक्तिगत जीवन के लिए कितना महत्त्वपूर्ण है। ध्यान, बौद्धिक विश्लेषण अथवा अनुसन्धान नहीं है। यह कोई मनोभाव अथवा प्रेम करना नहीं है। यह एकाग्रता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प नहीं है। ध्यान में अन्तःकरण का कोई भी पक्ष सक्रिय नहीं होता है। वास्तविक ध्यान, हमारे भीतर आध्यात्मिक स्फुलिंग (Spark) का स्वतः प्रज्वलित होना है तथा इसके द्वारा उस कारागृह को तोड़ने का प्रयास करना है जिसमें यह बन्दी है। यह आध्यात्मिक स्फुलिंग अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करना चाहता है, और जिस क्षण ऐसा घटित होता है, यह श्री हनुमान के समान शक्तिवान–बलवान बन जाता है। श्री हनुमान अपने बल–शक्ति से अनभिज्ञ थे। हम सब भी उन लघु हनुमान के समान हैं, जो बिना किसी शक्ति एवं बल के मूर्ख प्रतीत होते हैं। श्री हनुमान राजा सुग्रीव के एक विनीत सेवक थे; वे एक दुर्बल–दीन की भाँति केवल अपने राजा की आज्ञानुसार कार्य करते थे।

परन्तु जाम्बवान ने उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप का स्मरण कराते हुए कहा, ''मेरे प्रिय मित्र! क्या तुम जानते हो कि तुम वायु-पुत्र हो; तुम्हें ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, मित्र एवं अन्य समस्त देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है; तुम अंजनि देवी के अमर पुत्र हो? क्या तुम अपने बल-शक्ति के विषय में जानते हो? क्या तुम जानते हो कि तुम पर्वत उठाकर आकाश में उड़ सकते हो।'' जिस क्षण श्री हनुमान से यह सब कहा गया, उन्होंने उत्तर-स्वरूप कहा, ''ओह, हाँ, हाँ! अब मुझे यह सब स्मरण आ गया है। मैं सोचता था कि मैं राजा सुग्रीव का केवल एक तुच्छ सेवक हूँ। अब देखो, मैं क्या करता हूँ।'' आप सब जानते ही हैं कि इसके पश्चात् क्या हुआ। मुझे इसका विस्तृत वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि महर्षि वाल्मीकि हमें इस विषय में विस्तारपूर्वक बताते हैं।

हम सबकी भी यही दशा है। श्री हनुमान की यह कथा, एक जीवात्मा की दशा का काव्यात्मक वर्णन ही है। हम सब मूर्ख-बुद्धिहीन प्रतीत होते हैं, परन्तु हम वास्तव में मूर्ख नहीं हैं। हम सबके भीतर विपुल ऊर्जा है, उसका अनुभव करने एवं उसे प्रकटित करने ही हम यहाँ आश्रम में आये हैं। हम यहाँ चाय-दूध पीने और फल खाने के लिए नहीं आये हैं। यह सब हमने अपने घरों में प्रचुर मात्रा में उपभोग किया था; और हम आश्रम यही सब प्राप्त करने के लिए नहीं आये हैं। यह सोचना मूर्खतापूर्ण होगा कि यहाँ हम पुनः उसी चक्र में फँस गये हैं। हम सब आश्रम में एक ऐसे विशिष्ट उद्देश्य से आये हैं, जो शारीरिक इच्छाओं एवं भौतिक सुख-सुविधाओं से उच्चतर एवं श्रेष्ठतर है, तथा इस उद्देश्य की महत्ता समझना आवश्यक है क्योंकि प्रायः हम इसे विस्मृत कर देते हैं, इससे च्युत हो जाते हैं। प्रारम्भ में हम अपने लक्ष्य-उद्देश्य के प्रति पूर्णतः जाग्रत होते हैं, इसके प्रति अत्यधिक उत्साह से परिपूर्ण होते हैं, परन्तु बाद में हमारा उत्साह मन्द हो जाता है, और धीरे -धीरे हम पूर्णतः उत्साहहीन हो जाते हैं। हमारी समस्त ऊर्जा एवं

उत्साह समाप्त हो जाता है तथा हम अपनी समस्त शक्ति खोकर पुनः लघु हनुमान के समान हो जाते हैं।

इसलिए, हमारी डायरी में हमें सर्वप्रथम यह लिखना है—'मैं इस आश्रम में कब आया? मैं यहाँ क्यों आया? मैं यहाँ किस कारण अथवा परिस्थितिवश आया? मैं किस लक्ष्य-उद्देश्य के साथ यहाँ आया? क्या मैंने उस उद्देश्य को पूर्ण कर लिया है? यदि नहीं, तो इसकी प्राप्ति में क्या बाधा आ रही है? बाधक तत्त्व कौन है? क्या मैं स्वयं ही बाधा हूँ अथवा अन्य कोई है? यदि कोई अन्य बाधा बन रहा है, तो उससे मुक्त होने का क्या उपाय है?' क्या हम सबको इस प्रकार तर्कपूर्ण विचार एवं चिन्तन नहीं करना चाहिए? हमें अवश्य विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हम उस लक्ष्य से च्युत नहीं हों, जिसके लिए हम यहाँ आये हैं। अन्यथा, हम अपने घर वापिस जा सकते हैं। हमें आश्रम में क्यों रहना चाहिए? निरर्थक-उद्देश्यहीन जीवन बिताना, जीवन के प्रति एक गम्भीर अपराध है। हम घर में रहते हैं अथवा एक आश्रम में रहते हैं। हमें घर अच्छा नहीं लगता है क्योंकि यह भौतिकता से पूर्ण है; यह केवल आर्थिक विषयों, धन-सम्पत्ति, यश, पद, शक्ति एवं आसक्ति के पाश में बद्ध है। हम अनुभव करते हैं कि यह सब व्यर्थ है। मनुष्य की तुच्छ कामनाओं-तृष्णाओं से श्रेष्ठ एक अन्य उद्देश्य है, इसलिए हम शिवानन्द आश्रम आये हैं। परन्तु, यहाँ आने के पश्चात् हमने क्या किया है? यहाँ आकर कुछ नहीं हुआ है, अर्थात् हममें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। ऐसा क्यों है? यह हमारा, स्वयं के प्रति ही घोर अपराध है क्योंकि हम आत्म-तत्त्व की अवहेलना करके, स्वयं को ही सर्वाधिक हानि पहुँचा रहे हैं। आत्मा के प्रति किया गया अपराध महानतम अपराध है। एक मनुष्य के प्रति किये गये अपराध को क्षमा किया जा सकता है, परन्तु आत्मा के प्रति किये गये अपराध के लिए हमें कभी क्षमा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यही वास्तविक पाप है। आत्मा के प्रति अपराध ही वास्तविक पाप है और यदि हम इस प्रकार का पाप करते हैं, तो हम दण्डित किये जायेंगे।

अतः यह हम सबके लिए सर्वाधिक उचित समय है कि हम अपने नेत्र खोलें तथा इस विश्व में अपने जीवन की वास्तविक स्थिति के प्रति जाग्रत हों। क्या हम आश्रम के पक्षी हैं, जो यहाँ की चार-दीवारों में बन्द हैं। हमारा लक्ष्य क्या है? क्या हम आश्रम के हैं, अथवा आश्रम हमारा है? क्या हम आश्रम के भीतर हैं, अथवा आश्रम हमारे सिर में (विचारों में) है? मनोवैज्ञानिक समस्याएँ एवं तनाव हमें अपनी वास्तविक स्थिति जानने से रोक सकते हैं। अपने लक्ष्य-उद्देश्य की विस्मृति ही वह महानतम संकट एवं विपदा है, जिससे हम ग्रस्त हो सकते हैं। यदि हम किसी देश में अपने देश की सरकार का प्रतिनिधित्व करते हुए एक राजदूत के रूप में जायें और उस उद्देश्य को ही भूल जायें जिसके लिए हम वहाँ आये हैं, तो हम राजदूत नहीं रह जाते हैं। हमारा उस सरकार से भी कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है जिसने हमें दूसरे देश भेजा है।

अतः, हम यहाँ आश्रम में घर बनाने के लिए नहीं आये हैं। इस उद्देश्य से कोई यहाँ नहीं आया है, क्योंकि हम सबके घर थे। क्या कोई व्यक्ति अपना सुख-सुविधापूर्ण घर छोड़कर यहाँ एक दूसरा घर-संसार बसाने आया है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। इसलिए हमें द्विवार, त्रिवार सावधान-सचेत होना चाहिए कि हम पुनः उसी संकटकारक मार्ग में प्रवेश नहीं कर लें जिसे हमने साधना के प्रारम्भिक समय में छोड़ने का प्रयास किया है।

यद्यपि हम अपने पिता, माता, पति, पत्नी, सन्तान को छोड़कर यहाँ आये हैं, परन्तु सम्भवतया हमारे पास यह जानने-समझने का समय नहीं था कि इन सबका वास्तव में हमारे जीवन में क्या स्थान है, क्या महत्त्व है। ये सब व्यक्ति नहीं हैं। परिवार, सम्बन्धीजन तथा धन-सम्पत्ति वास्तव में व्यक्ति एवं वस्तुएँ नहीं हैं। ये केवल भावनात्मक सम्बन्ध अथवा दृष्टिकोण हैं। ये भावनात्मक सम्बन्ध ही आत्मा के बन्धन हैं। हमारे पिता एवं माता बन्धन नहीं हैं, क्योंकि ये अन्य मनुष्यों की भाँति केवल मनुष्य ही हैं। हम यहाँ आश्रम में भी विभिन्न मनुष्यों

को देखते हैं, तो इनमें एवं उनमें (माता–पिता) क्या अन्तर है? अन्तर भावनात्मक सम्बन्ध का है। माता–पिता कहलाने वाले मनुष्य हमारा बन्धन नहीं हैं, अपितु उनके प्रति हमारा भावनात्मक सम्बन्ध अथवा जुड़ाव ही बन्धन है। इसलिए, हम अब भी वही गृहस्थ व्यक्ति हैं यदि हमने अपने परिवार–जनों को छोड़ दिया है परन्तु आश्रम में रहते हुए भी उनके प्रति अपने भावनात्मक सम्बन्ध को यथावत् बनाये रखा है। फिर, यहाँ आश्रम आने से हममें कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं है, और हम आध्यात्मिक रूप से पूर्णतः असफल हो गये हैं। इस प्रकार की स्थिति में, घर लौट जाना ही श्रेष्ठ है। यहाँ आश्रम में रहने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि घर ईंट–पत्थर एवं चार–दीवारों युक्त भवन नहीं है, घर एक मानसिक परिवेश अथवा स्थिति है।

पत्थर की दीवारें कारागृह नहीं बनाती है। कारागृह चार–दीवारों का एक भवन नहीं है; कारागृह एक स्थिति है। एक कारागृह भी किसी अन्य भवन के समान भवन ही है, तो फिर एक कारागृह एवं मन्दिर में क्या अन्तर है? इनमें अन्तर परिस्थिति एवं मानसिक दशा का है। आश्रम एवं घर में क्या अन्तर है? इनमें अन्तर यह नहीं है कि एक आश्रम स्वर्ण से बना होता है। आश्रम एवं घर, दोनों ही ईंट एवं सीमेन्ट से बने होते हैं। हमारी मानसिक स्थिति, मनोवैज्ञानिक दशा का ही अन्तर है। यदि यहाँ हमारी मानसिक–मनोवैज्ञानिक स्थिति वही है जैसी घर में थी, तो यदि हम इसे आश्रम कह भी दें, तो उससे क्या लाभ है?

जब हम प्रकृति के सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य करते हैं, तो जीवन असफल हो जाता है, और कभी–कभी यह द्विवार एवं त्रिवार असफल हो जाता है। हम केवल सामान्य स्तर पर नहीं, अपितु व्यापक स्तर पर असफल हो सकते हैं, परास्त हो सकते हैं। इसलिए, हमें प्रकृति के साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहिए, और न ही भगवान् एवं उनके सिद्धान्तों–नियमों का परिहास करना चाहिए। हमें अपनी आत्मा के साथ भी परिहास नहीं करना चाहिए। अपनी आत्मा के साथ परिहास करना, एक पाखण्डी होना है। आप अपनी आत्मा से कहते हैं कि आप

एक साधक–मुमुक्षु हैं, परन्तु अपने मन में आप एक गृहस्थ ही हैं, तो यह आत्मा के प्रति पाखण्डपूर्ण व्यवहार है और यह आपको इस अपराध के लिए दण्डित करेगी। आप तीन तत्त्वों के साथ छल नहीं कर सकते हैं, उन्हें धोखा नहीं दे सकते हैं, ये हैं—भगवान्, प्रकृति एवं आत्मा। हम किसी भी अन्य व्यक्ति को छल सकते हैं। आत्मा, प्रकृति एवं भगवान् के साथ छल नहीं किया जा सकता है, ये तीन ही केवल सत्य हैं। दुर्भाग्यवशात् हमारे लिए अन्य कोई सत्य नहीं है। मनुस्मृति अत्यन्त स्पष्ट स्वर में कहती है कि समय आने पर यह पृथ्वी, जिस पर हम खड़े हैं, हमारे कर्मों की साक्षी होगी अर्थात् यह हमारे सभी कर्मों का साक्ष्य प्रस्तुत करेगी। इसे पढ़ना भयप्रद है। मनु कहते हैं कि जिस पृथ्वी पर हम खड़े हैं, वही हमारे कर्मों की साक्षी बनेगी। इसलिए, यह नहीं सोचें कि आप प्रकृति से कुछ छिपा सकते हैं। सूर्य, चन्द्र एवं तारागण, हमारे कर्मों के साक्षी बनेंगे। ऐसा नहीं कहें कि आपने यह कर्म सबसे छिपकर चुपचाप किया है, अन्य व्यक्ति इस विषय में कुछ नहीं जानते हैं। एक दिन ये वृक्ष भी बोलेंगे। अभी आपके समक्ष वृक्ष की ये पत्तियाँ मुस्कुरा रही हैं, वे भी बोलेंगी कि आपने क्या किया है तथा क्या सोचा है। आप अपने विचारों एवं कर्मों को छिपा नहीं सकते हैं। भगवान् ही प्रकृति के रूप में बोल रहे हैं, मुस्करा रहे हैं, अप्रसन्न–क्रोधित हो रहे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम एक अत्यन्त गम्भीर परिवेश अथवा वातावरण में रह रहे हैं, और इस गम्भीरता को समझने, इसका अनुभव करने ही हम आश्रम आये हैं।

भगवान् ने हमारे भौतिक जीवन की सब आवश्यकताएँ पूर्ण की हैं, हमें सब सुख–सुविधाएँ प्रदान की हैं; इसे हमें अपने जीवन की सफलता का संकेत नहीं मानना चाहिए क्योंकि सफलता किसी भिन्न तत्त्व से निर्मित होती है। उच्च सामाजिक स्थिति, मान–सम्मान एवं भौतिक समृद्धि, सफलता के लक्षण नहीं हैं क्योंकि यह सब रावण एवं हिरण्यकशिपु के पास भी था। वे भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे, अत्यधिक वैभव–सम्पन्न थे; परन्तु क्या हम उन्हें सफल व्यक्ति कहते

हैं? इसलिए, हमें सामाजिक स्थिति, यश, प्रसिद्धि, पद, शक्ति अथवा भौतिक समृद्धि के जाल में नहीं फँसना चाहिए।

यदि हमारे पास एक अच्छा कमरा एवं अच्छा कम्बल है, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हमने एक सफल जीवन व्यतीत किया है क्योंकि सफलता से अभिप्राय आत्मा की इच्छाओं–कामनाओं एवं तनावों पर विजय है। इसे स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है। ऊनी स्वेटर, कम्बल, गर्म चाय, दूध एवं फलों का प्राप्त होना सफलता नहीं है। यह सफलता नहीं है। यद्यपि यह सब हमें भगवद्–कृपा से प्राप्त हुआ है, परन्तु इसे सफलता का सूचक नहीं माना जा सकता है। इसके विपरीत, यह हमारे पतन का सूचक हो सकता है। दुर्भाग्यवशात्, यह उससे विपरीत हो सकता है जो हम अपने मन में सोच रहे हैं। हम जितना नीचे गिरते हैं अर्थात् जितना हमारा पतन होता है, हम अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में उतने श्रेष्ठ प्रतीत हो सकते हैं। इसलिए, आध्यात्मिक जीवन में सफलता को एक भिन्न मापदण्ड द्वारा ही जाना जा सकता है और वह मापदण्ड है—भगवान् के प्रति सच्चे–ईमानदार होना तथा स्वयं अपने प्रति सच्चा–ईमानदार होना।

मुख्य बात यह है कि हमें उस उद्देश्य का चिन्तन करना है जिसकी पूर्ति के लिए हम यहाँ आये हैं। हमें अपने उद्देश्य को भूलना नहीं चाहिए। गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज को पर्शिया के राजा डेरियस की कहानी अत्यन्त प्रिय थी। डेरियस एक मन्त्री थे जो बाद में एक राजा बने, परन्तु उन्होंने अपना जीवन एक गड़रिये (Shepherd) के रूप में प्रारम्भ किया। पर्शिया एवं मध्य एशिया के क्षेत्रों में एक गड़रिये के वस्त्र, निर्धनता के कारण, प्रायः फटे–पुराने एवं अस्वच्छ ही होते थे। अचानक भाग्य–उदय होने से डेरियस, पर्शिया के राजा के मन्त्री बने। वे इतने कुशल प्रशासक थे कि शीघ्र ही राजा के प्रियपात्र बन गये। वे राजा को अत्यन्त प्रिय थे; अतः राजा छोटे–से–छोटे विषय में उनसे परामर्श लेते थे। राजा सदैव डेरियस से ही मन्त्रणा करते थे, उन्हें अन्य किसी व्यक्ति पर विश्वास नहीं था।

अन्य मन्त्री–दरबारी जनों को यह अच्छा नहीं लगता था। वे कहते थे, ''देखो, इस एक व्यक्ति को इतना अधिक मान–सम्मान दिया जा रहा है। इसे अपमानित किया जाना चाहिए।'' उन्होंने एक योजना बनायी। उन्होंने देखा कि जब भी डेरियस किसी कार्य हेतु बाहर जाते थे, वे ऊँट पर बैठकर जाते थे। पर्शिया में ऊँटों का ही वाहन के रूप में उपयोग किया जाता था। जब भी डेरियस बाहर जाते थे, वे अपने साथ एक छोटा सन्दूक भी बाँधकर ले जाते थे। कोई भी नहीं जानता था कि उस सन्दूक में क्या था। डेरियस प्रतिदिन अपने साथ वह सन्दूक ले जाते थे।

दरबारी जनों ने सोचा 'डेरियस एक चोर है जबकि राजा उसे एक बहुत अच्छा व्यक्ति मानते हैं। प्रतिदिन यह क्या लेकर जाता है?' वे राजा के पास गये और बोले, ''श्रद्धेय महाराज, आपकी डेरियस के विषय में धारणा पूर्णतः गलत है। यह एक दुष्ट व्यक्ति है। यह आपको धोखा देने, छलने के लिए आया है।''

राजा ने पूछा, ''ऐसा क्यों कहते हैं? आपका क्या अभिप्राय है?''

उन्होंने कहा, ''हम आपको बतायेंगे। क्या आपने देखा है कि वह प्रतिदिन अपने साथ एक सन्दूक ले जाता है? वह जहाँ भी जाता है, यह सन्दूक उसके साथ होता है। इसमें वह क्या ले जाता है? वह इसमें कोई रहस्यमय वस्तु ही ले जाता है; कोई व्यक्ति इस सन्दूक को खोल नहीं सकता है और वह स्वयं भी इसे किसी अन्य को नहीं दिखाता है। वह आपके राज्य के सर्वाधिक मूल्यवान खजाने को ले जाता है और वह उसे घर पर भी नहीं छोड़ना चाहता है ताकि अन्य व्यक्ति उससे कुछ पूछ नहीं सकें। इसलिए, वह जहाँ जाता है, इस सन्दूक को अपने साथ ले जाता है। उसे वह सन्दूक दरबार में लाने के लिए कहिए तथा आपकी उपस्थिति में खोलने की आज्ञा दीजिए। आप स्वयं सत्य जान जायेंगे।''

राजा स्तब्ध रह गये। "डेरियस इस प्रकार का व्यक्ति है? मैंने ऐसा कभी नहीं सोचा। यह नहीं हो सकता है। ओह, मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता हूँ।"

तब दरबारी-जन राजा को ऊँट के समीप ले गये और बोले, "देखिए, ऊँट की पीठ पर यह सन्दूक है।" राजा को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। जब दस व्यक्ति एक ही बात कहते हैं, तो उसे अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है, उसे मिथ्या नहीं कहा जा सकता है।

राजा ने डेरियस को बुलाया और कहा, 'मेरे प्रिय मित्र, क्या आप मुझे दिखा सकते हैं कि इस सन्दूक के अन्दर क्या है?'

डेरियस परिस्थिति को तुरन्त समझ गये कि क्या घटित हुआ है। इससे पूर्व, राजा ने ऐसे शब्द नहीं कहे थे। डेरियस ने कहा, "महाराज, इसमें एक अद्भुत निधि-खजाना है।" फिर उन्होंने सन्दूक को ऊँट की पीठ से नीचे उतारकर, दरबारी-जनों के समक्ष खोला। उन्होंने कहा, "मेरे मित्रों, यही राज्य का वह खजाना है जिसके लिए आप सब मेरे पीछे पड़े हैं।" उस सन्दूक के अन्दर उनके फटे-पुराने वस्त्र थे जो वर्षों पूर्व, वे एक गड़रिये के रूप में पहना करते थे। उन्होंने राजा एवं दरबारी-जनों से कहा, "यही मेरी वास्तविक सम्पत्ति है। मैं आज भी वास्तव में, यही हूँ। महाराज, मैं आज ही यह महल छोड़कर जा रहा हूँ। मुझे पर्याप्त मात्रा में आपका आतिथ्य प्राप्त हो चुका है।" उन्होंने अपने पुराने वस्त्र उठाये और महल छोड़कर जाने लगे। "मैं दरबार में अपनी इस स्थिति को समझ रहा हूँ, और मैं अब अपनी पूर्व-स्थिति में आ गया हूँ। इसलिए, मैं महल छोड़कर जा रहा हूँ", यह कहते हुए उन्होंने सबके समक्ष अपने पुराने वस्त्र पहने और महल छोड़कर चले गये। परन्तु, भगवान् ने उन्हें अपना आशीर्वाद प्रदान किया। भगवान् ने उन्हें ऐसे नहीं त्याग दिया; कुछ समय पश्चात्, भगवद्-कृपा से वे राजा बने।

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज को यह कहानी अत्यन्त प्रिय थी, और यह डिवाइन लाइफ पत्रिका में भी छपी थी जिससे कि

हम जान सकें कि हमारी स्थिति क्या है और हमारे साथ क्या हो सकता है। किसी व्यक्ति को भी यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि वह इस संसार में सुरक्षित है—चाहे वह आप हों, मैं हूँ अथवा अन्य कोई भी हो। यहाँ कोई भी अन्ततः सुरक्षित नहीं है। सम्राट् नेपोलियन और सम्राट् सीजर भी सुरक्षित नहीं थे। इस संसार में कोई भी सुरक्षित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का निश्चित दिन होता है, और प्रत्येक की बुद्धिमानी इसी में है कि वह भगवान् के अनुग्रह-आशीर्वाद को स्वीकार करने के लिए तत्पर रहे, चाहे वह किसी रूप में भी आये। परन्तु यह आवश्यक है कि हमें अपने इस दृष्टिकोण के प्रति ईमानदार रहना होगा।

इस कहानी की उन आश्रमवासियों के लिए विशेष प्रासंगिकता है, जो साधना के लिए उपलब्ध सुविधाओं के कारण अपने ही मन द्वारा भ्रमित किये जा सकते हैं। आश्रम में साधकों को जो सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं, वे साधना करने हेतु प्रदान की जाती हैं। मान लीजिए कि उन्हें भोजन उपलब्ध नहीं है और उन्हें प्रतिदिन ऋषिकेश के किसी क्षेत्र में भिक्षा के लिए जाना पड़ता है, तो उनका आधा दिन तो इस प्रकार केवल आने-जाने में ही व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने सोचा, "यह अच्छा नहीं है। मुझे इनकी सहायता करनी चाहिए। ये साधकजन आश्रम में ही रहें और सम्पूर्ण दिन अपनी साधना में संलग्न रहें।" इसलिए, आपको यहाँ भोजन उपलब्ध कराया जाता है और आपको किसी क्षेत्र में भिक्षा के लिए जाने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु एक समय ऐसा भी था जब प्रत्येक आश्रमवासी को सूखी रोटी लेने हेतु क्षेत्र जाना पड़ता था और लौटकर पुनः सेवा-कार्य करना होता था। उस समय आश्रम में रसोई-गृह नहीं था। केवल एक व्यक्ति ऐसे थे, जो क्षेत्र नहीं जाते थे, वे गुरुदेव स्वयं थे। एक शिष्य उनके लिए भोजन लाता था, और रोटी को पुनः गरम करके उन्हें देता था। हमारे यहाँ एक पुस्तकालय भी है। क्या आपको कहीं अन्य स्थान पर पुस्तक मिल सकती है? कोई भी आपको पुस्तक पढ़ने के लिए नहीं देगा, परन्तु यहाँ आपको सब पुस्तकें

उपलब्ध हैं; यहाँ आपको धर्म एवं दर्शन पर विश्व की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें प्राप्त होंगी। आपको भोजन के लिए भिक्षा माँगने की आवश्यकता नहीं है, आपको किसी से पुस्तकें माँगने की आवश्यकता नहीं है, आपको किसी से वस्त्र माँगने की आवश्यकता नहीं है, आपको रहने के लिए कमरा माँगने की आवश्यकता नहीं है। भगवान् की कृपा से, आप यहाँ राजाओं के समान रहते हैं। परन्तु इस अवसर का सदुपयोग, उसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाना चाहिए, जिसके लिए आपको यह दिया गया है।

बाइबिल की उस कहानी का स्मरण करें जिसमें एक धनी व्यक्ति ने अपने सेवकों को कुछ धनराशि दी थी। उनमें से एक सेवक, उस धनराशि का सदुपयोग करके समृद्धिशाली बना तथा दूसरे सेवक ने उस धनराशि का दुरुपयोग किया। उनका स्वामी आया और उसने उस सेवक की अत्यधिक भर्त्सना की जिसने धन का दुरुपयोग किया था। भगवान् ने हमें ये सब सुख-सुविधाएँ इसलिए दी हैं ताकि हम उनकी महिमा का गान कर सकें, सम्पूर्ण जगत् में उनकी महानता की उद्घोषणा कर सकें तथा सम्पूर्ण मन-हृदय द्वारा उनका स्मरण कर सकें। न्यू टेस्टामेंट की यह 'स्टोरी ऑफ टेलेन्ट्स' हमारे व्यक्तिगत जीवन की ही सूचक है। भगवान् आपसे बाद में कहेंगे, "मूर्ख व्यक्ति, मैंने तुम्हें सभी सुविधाएँ दीं। तुमने इनका किस प्रकार उपयोग किया?" जब उपरोक्त कहानी में स्वामी ने घर लौटकर सेवकों से पूछा कि उन्होंने उस उपहार-धनराशि का क्या किया जो उन्हें दी गयी थी। एक व्यक्ति ने उत्तर दिया, "मैंने उसे पृथ्वी के नीचे दबा दिया।" क्या हम भी भगवान् को यही उत्तर देने वाले हैं? दूसरे व्यक्ति ने उसका उपभोग किया, परन्तु तीसरे व्यक्ति ने उसका सदुपयोग किया।

जीसस क्राइस्ट की यह नीति-कथा हम सबके मनन के लिए है। गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज द्वारा प्रदत्त समस्त सुख-सुविधाओं के साथ आपने क्या किया है? आपको इतनी अधिक सुविधाएँ, अकल्पनीय सुविधाएँ प्राप्त हैं। क्या आप आध्यात्मिकता के

पथ पर प्रगति कर रहे हैं, अथवा आप ईर्ष्या एवं सुविधाओं के आधिक्य से स्वयं को मलिन, कलंकित एवं क्लान्त कर रहे हैं? कर्म का विधान अटल है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की भाँति है, और यह प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता है। कर्म का विधान, केवल निर्धन व्यक्ति के लिए नहीं है, यह धनी व्यक्ति के लिए भी है। यह मन्त्री, राजा, सम्राट्, सबके लिए है। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का नियम-सिद्धान्त सबके लिए समान रूप से कार्य करता है, उसी प्रकार कर्म का विधान-सिद्धान्त भी सबके लिए समान है। कर्म का सिद्धान्त, गुरुत्वाकर्षण के नैतिक सिद्धान्त का ही दूसरा नाम है। भौतिक सिद्धान्त को गुरुत्वाकर्षण कहते हैं, और नैतिक सिद्धान्त को कर्म-सिद्धान्त कहते हैं परन्तु इन दोनों में एक ही सिद्धान्त समान रूप से कार्य करता है। यदि इस जगत् में हमारा जीवन, जगत् को संचालित करने वाले नियमों-सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है, तो ये नियम-सिद्धान्त हमें दण्डित करेंगे। इसे ही कर्मों का फल कहा जाता है। यही भवचक्र अर्थात् जन्म-मरण के चक्र का कारण है।

इसलिए, प्रतिदिन प्रातःकाल जब हम उठें, तो हमें मन में यह संकल्प करना चाहिए कि हम अपने लिए कम से कम लेंगे तथा यथासम्भव अधिकाधिक देंगे। यही भगवान् को प्रसन्न करने का मार्ग है —कम से कम लें तथा अधिकाधिक दें। यही मोक्ष का मार्ग है। यदि हम अधिकाधिक लेते हैं तथा कम से कम देते हैं, तो इससे अधिक घोर त्रुटि-गलती अन्य कोई नहीं हो सकती है। हम सब कुछ माँगते हैं, "मुझे यह चाहिए, मुझे वह चाहिए। मुझे यह दीजिए, मुझे वह दीजिए।" परन्तु, हम किसी को कुछ भी देते नहीं हैं। यह व्यवहार कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार्य नहीं है, वह इसे सहन नहीं करता है; और यह संकटकारक व्यवहार अथवा दृष्टिकोण है। भगवान् की चक्की बहुत धीरे-धीरे पीसती है, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्मता से पीसती है अर्थात् समय आने पर हमें अपने कर्मों का समुचित फल अवश्य ही प्राप्त होता है। भगवान् तत्क्षण कोई कार्यवाही नहीं करेंगे, दण्ड नहीं देंगे। वे सदैव

अत्यन्त सहृदय एवं करुणामय हैं। यदि आप एक गलती करते हैं, तो वे कहेंगे "ठीक है, हम विचार करेंगे। अगली बार तुम सुधर जाओगे।" आप दूसरी बार गलती करते हैं, तो वे कहेंगे "कोई बात नहीं। आगे देखते हैं।" जब आप तीसरी बार गलती करेंगे, तो भगवान् आपसे कहेंगे, "तुम यह गलती तीन बार कर चुके हो। कृपया इसे नहीं दोहराओ।" चौथी बार गलती करने पर वे कहेंगे, "मैंने तुमसे यह गलती नहीं करने के लिए कहा था। फिर, तुमने यह गलती कर दी है।" भगवान् इसे किसी अन्य रूप में कहेंगे। यदि आप पाँचवीं बार गलती करते हैं, तो भगवान् कहेंगे, "यदि तुम स्वयं को नहीं सुधारोगे, तो तुम्हें दण्ड भुगतना होगा।" इसके पश्चात्, भगवान् अपने नेत्र खोल लेंगे। छठी बार गलती करने पर, वे थोड़ा हल्का दण्ड देंगे। ऐसा नहीं है कि वे वज्राघात नहीं करेंगे अर्थात् महान् कष्ट नहीं देंगे। भगवान् बहुत अच्छे हैं, अत्यधिक दयामय हैं। उनके समान कोई अच्छा नहीं हो सकता है, करुणामय नहीं हो सकता है। इसलिए, वज्राघात तुरन्त नहीं किया जाता है।

महाभारत में भगवान् कृष्ण एवं दुर्योधन के संवाद का वर्णन आता है। भगवान् कृष्ण ने कभी भी सहसा कार्य नहीं किया। उन्होंने सदैव सौहार्दपूर्ण-मैत्रीपूर्ण वचन कहे। उन्होंने कहा, 'मेरे प्रिय मित्र! तुम अपने भाइयों को क्यों कष्ट दे रहे हो? तुम इन्हें इनका भाग क्यों नहीं दे देते हो?'

"नहीं, मैं इन्हें कुछ नहीं दूँगा।" दुर्योधन ने कहा।

"कृपया, इन्हें इनका भाग दे दो। अपने भाइयों को इस प्रकार दुःखी-सन्तप्त देखना धर्म नहीं है, यह न्यायपूर्ण नहीं है," भगवान् कृष्ण ने कहा।

उसने कहा, "नहीं। बिल्कुल नहीं। आप अपना कार्य करें अर्थात् इसमें हस्तक्षेप नहीं करें।"

तब भगवान् कृष्ण ने कहा, "ठीक है। तुम्हें इनका सम्पूर्ण भाग देने की आवश्यकता नहीं है। क्या तुम इन्हें इनके भाग का एक छोटा अंश

दोगे? इनके लिए वही पर्याप्त होगा। क्या तुम इन्हें केवल पाँच गाँव दे सकते हो?"

"नहीं, मैं इतना भी नहीं दूँगा। मैं पाँच गाँव तो क्या, एक गाँव भी नहीं दूँगा", दुर्योधन ने उत्तर दिया। इस प्रकार वह छोटी सी प्रार्थना भी अस्वीकार कर दी गयी। इसके पश्चात्, स्थिति गम्भीर होती गयी और हम जानते हैं कि भगवान् ने अपने इस कृष्णावतार में क्या लीलाएँ कीं।

जब भगवान् किसी व्यक्ति पर प्रहार करते हैं, तो वे उसे धूलि-धूसरित कर देते हैं, उसके पश्चात्, उसे कोई नहीं बचा सकता है। भगवान् कृष्ण की नीति 'सिंह-नीति' है। सिंह-नीति का अभिप्राय एक सिंह अथवा शेर के समान व्यवहार करना है। एक सिंह सामान्यतया शान्त ही रहेगा। यदि आप उस पर एक पत्थर फेंकते हैं, तो वह कुछ नहीं करेगा। वह केवल देखेगा। एक पत्थर, दो पत्थर, फिर तीन पत्थर, आपके इस प्रकार पत्थर फेंकने से सिंह खड़ा नहीं होगा, परन्तु यदि एक बार वह खड़ा हो गया, तो फिर आपको कोई नहीं बचा सकता है। जब एक बार सिंह खड़ा हो जाये, तो विश्व की कोई शक्ति आपकी रक्षा नहीं कर सकती है। यही भगवान् कृष्ण रूपी सिंह ने किया। वे पहले शान्त-मौन रहे। परन्तु एक बार जब वे खड़े हो गये, तो उन्होंने घटनाक्रम को अपने अन्तिम परिणाम तक पहुँचा दिया। यही भगवान् हममें से प्रत्येक के साथ करेंगे और वे जन्म-मरण के चक्र के माध्यम से यही करते हैं।

इसलिए, ऐसा कहा जाता है कि भगवान् के भय से ज्ञान का प्रारम्भ होता है। यदि आप भगवान् से भयभीत नहीं होते हैं, तो इसका अभिप्राय है कि आप ज्ञानहीन हैं। आप नहीं जानते हैं कि भगवान् आपके साथ क्या कर सकते हैं। भगवान् के समान अत्यन्त दयामय कोई अन्य नहीं हो सकता है; तथा उनके समान कठोर भी अन्य कोई नहीं हो सकता है। भगवान् अत्यन्त करुणामयी माँ हैं, परन्तु साथ-ही-साथ वे एक अत्यधिक कठोर न्यायाधीश भी हैं। भगवान् में ये दोनों ही समाहित हैं।

जीवन गम्भीर है, इसी गम्भीरता को समझने हम शिवानन्द आश्रम में, गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज के चरणों में आये हैं; जिन्होंने हमारे लिए वह सब कुछ किया है जो आवश्यक है। आप श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज के समान अन्य गुरु प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इस संसार में अत्यन्त अल्प मनुष्य ही ऐसे हैं जो इतने उदार, इतने विशालहृदयी, इतने अच्छे, इतने क्षमाशील एवं सहनशील हैं; और आप ऐसी स्वतन्त्रता भी कहीं किसी अन्य संस्था में प्राप्त नहीं करेंगे, जैसी आपको इस आश्रम में प्राप्त है। यह स्वतन्त्रता आपको इसलिए नहीं दी गयी है कि आप इसका दुरुपयोग करें, परन्तु यह इसलिए दी गयी है कि आप जीवन के प्रत्येक कदम पर प्रतिबन्धित, सीमित अथवा अपमानित अनुभव नहीं करें।

आश्रम के अन्तेवासियों को जो स्वतन्त्रता प्राप्त है, उसका दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए अपितु उसका सदुपयोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति हेतु किया जाना चाहिए। यदि हम इसका सदुपयोग नहीं करते हैं, तो हम गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज की अवज्ञा करेंगे, हम उनके सच्चे शिष्य नहीं होंगे; और हम भगवद्-कृपा का भी अनादर करेंगे। हमें सर्वशक्तिमान् प्रभु से अपने हृदय के अन्तस्तल से प्रतिदिन यह प्रार्थना करनी चाहिए कि यदि हमने इस प्रकार की कोई गलती की है तो हमें क्षमा कर दिया जाये, "कल से, मैं ठीक हो जाऊँगा, स्वयं को सुधार लूँगा। मैं केवल उचित कर्म ही करूँगा और मैं संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करूँगा। मैं केवल वही स्वीकार करूँगा जो मेरे जीवन की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति करता हो।"

वास्तव में, हमें जीवन की मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओं से कुछ अधिक स्वीकार करने का अधिकार नहीं है। आप अपने कमरे में दस कोट, पाँच घड़ियाँ एवं चार ट्रांजिस्टर नहीं रख सकते हैं। यह अपराध है। इन्हें रखने के लिए आपसे किसने कहा? आपको इन सबकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपको केवल थोड़े चावल, दो रोटी और एक

कप दूध ही चाहिए। यह ठीक है। आप दो कम्बल रख सकते हैं, परन्तु आप इससे अधिक क्यों रखते हैं?

इसलिए, अपने मन में एक निर्णय एवं एक दृढ़ संकल्प लिया जाना चाहिए, "मैं आश्रम से, सामान्य जनों से तथा भगवान् से अल्पतम ही लूँगा।" किसी से उपहार-दान आदि नहीं लें। बालक नचिकेता ने यमराज के आशीर्वाद-वरदान को भी अस्वीकार कर दिया था। यद्यपि उन्हें वरदान-स्वरूप तीनों लोकों का स्वामित्व प्राप्त हो रहा था, उन्होंने कहा, "इन्हें वापिस लें। मैं यह नहीं चाहता हूँ।" यदि ऐसा वरदान हमें प्राप्त होता है, तो क्या हम इसे स्वीकार करेंगे अथवा नहीं? एक छोटे बालक नचिकेता ने तीनों लोकों को अस्वीकार कर दिया था। नचिकेता कौन थे? वे हमारे समान एक साधक ही थे, परन्तु वे अत्यन्त दृढ़-निश्चयी थे। वे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हेतु यमराज के पास गये थे। हम भी इसी उद्देश्य से यहाँ आये हैं। परन्तु क्या हम नचिकेता जैसे हैं? यदि हमें तीनों लोक दिये जायें, तो क्या हम उन्हें अस्वीकार कर सकते हैं? हमारा एवं नचिकेता का उद्देश्य समान ही है, परन्तु अनुचित निर्णयों, मन की जड़ता-मूढ़ता, तमोगुण एवं रजोगुण की प्रबलता तथा इन्द्रियों की चंचलता के कारण हम अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए, हमें इनसे स्वयं को सुरक्षित रखना होगा, और आध्यात्मिक आकांक्षा से युक्त सच्चा जीवन जीना होगा। जब हमारे जीवन में यह सच्चाई सुनिश्चित हो जाती है, तब हम ध्यान की उचित प्रक्रिया का अभ्यास करने में समर्थ होंगे।

अब, हम ध्यान की वास्तविक प्रक्रिया पर आते हैं। जब हम ध्यान के लिए बैठते हैं, तो हमें किसका ध्यान करना है? प्रत्येक साधक के मन्त्र के अनुसार इसका निर्णय किया जायेगा। चाहे हमने गुरु द्वारा किसी मन्त्र की दीक्षा प्राप्त की हो अथवा किसी देवी-देवता के प्रति हमारी सहज-स्वाभाविक आस्था हो; हमारी भगवान् के सम्बन्ध में कुछ भी अवधारणा हो, इन सबसे ध्यान-प्रक्रिया में अन्ततः कोई अन्तर नहीं पड़ता है। हम भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव, देवी, सूर्य अथवा जीसस

क्राइस्ट के भक्त हो सकते हैं अथवा हम ज़ेन (Zen) बौद्ध सम्प्रदाय की ध्यान-पद्धति के अनुयायी हो सकते हैं। यह सब ठीक है। इन सब विधियों में कुछ अनुचित नहीं है। प्रत्येक विधि अच्छी है, परन्तु यह तभी आत्मा की उचित क्रिया तथा ध्यान की उचित विधि कही जा सकती है जब यह आत्म-एकीकरण (self-integration) की प्रक्रिया हो। ध्यान की समस्त विधियाँ आत्म-एकीकरण की प्रक्रियाएँ हैं; ये आत्म-क्षय (self-dissipation) अथवा विक्षेप के विपरीत प्रक्रियाएँ हैं। ध्यान के अभ्यास में, इन्द्रियों की ऊर्जा को बहिर्मुखी दिशा से मोड़कर, आत्मा की दिशा में लाया जाता है। हमारी समस्त ऊर्जा को इन्द्रिय-विषयों से हटाकर आत्मा की ओर लाया जाता है। मुझे यह व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है कि आत्मा क्या है; क्योंकि आप सब श्रीमद्भगवद्गीता एवं उपनिषदों के अध्ययन से जानते ही हैं कि वस्तुतः आत्मा क्या है। इस आध्यात्मिक क्रिया में, जिसे हम ध्यान कहते हैं, हमारी ऊर्जा को एक शक्तिशाली सत्ता 'आत्मा' की ओर निर्देशित किया जाता है जो हम स्वयं ही हैं।

ध्यान के समय क्या होता है? इसकी व्याख्या करना कठिन है। यदि आप केवल कल्पना भी करेंगे कि ऊर्जा को इन्द्रिय-विषयों की ओर प्रवाहित होने से रोककर आत्मा की ओर ले जाने से क्या होगा, तो आपका शरीर रोमांचित हो जायेगा। इसे शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है। यदि आप उचित विधि अथवा तकनीक के अनुसार ध्यान करते हैं, तो आधे घण्टे के ध्यान से ही आप अत्यधिक शक्ति एवं ऊर्जा से भर जायेंगे।

जिस ऊर्जा को आप व्यर्थ गँवा रहे थे, वह आपके पास पुनः लौट कर आती है। आप इतना ऊर्जस्वित-स्फूर्तिवान अनुभव करते हैं कि जैसे आपने कोई टॉनिक लिया हो। जब आप कोई टॉनिक लेते हैं, तो आप ऊर्जावान अनुभव करते हैं। टॉनिक की औषधि द्वारा आपकी अपव्यय हुई ऊर्जा-शक्ति आपको पुनः प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार, ध्यान की प्रक्रिया में इन्द्रिय-पदार्थों एवं कार्यों की ओर जाती ऊर्जा को

रोक लिया जाता है तथा उसे आत्मा की ओर मोड़ा जाता है। इससे हमारी बुद्धि, स्मृति, बोध-क्षमता, सदाचारिता, सद्गुणों एवं न्यायनिष्ठा का अत्यधिक विकास होता है; हमारी भगवद्-प्राप्ति की आकांक्षा भी बलवती होती है। ये सब ऊर्जस्वित हो जाते हैं तथा एक नवीन प्रकाश एवं आभा प्राप्त करते हैं। ध्यान का अभ्यास करें और फिर देखें; क्योंकि यह स्वयं करके, अनुभव प्राप्त करने का विषय है। केवल इसके विषय में श्रवण करने अथवा चर्चा करने का कोई अर्थ अथवा उपयोग नहीं है, क्योंकि भोजन करने से क्या होगा, यह जानने के लिए आपको स्वयं भोजन करना होगा। केवल भोजन पर एक व्याख्यान सुनने से, आप यह समझ नहीं सकते हैं कि भोजन क्या है। खायें, और इसके पश्चात्, आप जानेंगे कि यह क्या है तथा इससे आप पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार, जब हम वास्तव में आत्मा की भव्यता अथवा ऐश्वर्य कही जाने वाली इस प्रक्रिया अर्थात् 'ध्यान' में प्रवेश करेंगे, तो हम स्वयं पर इसके प्रभाव का अनुभव कर पायेंगे।

सर्वप्रथम, हमें स्वयं को पूर्णतः विश्रान्त-शिथिल करना होता है। एक सुखदायक आसन में बैठें। यह स्मरण रखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हम एक सुखदायक आसन में बैठते हैं, कष्टकारक आसन में नहीं बैठते हैं ताकि हम शरीर के विषय में नहीं सोचें। **स्थिरं सुखं आसनं** (योगसूत्र-२-४६)। हम एक अत्यन्त सरल एवं सुखदायक आसन में इसलिए बैठते हैं ताकि हमें इसके विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाये, क्योंकि हमें किसी अन्य विषय पर विचार करना है। यही कारण है कि हमें एक सुखदायक आसन में बैठना होता है। यह एक बात है।

दूसरी बात है अपनी स्नायुओं, भावनाओं एवं मन को शिथिल-शान्त करना। ध्यान, विश्रान्ति है। ध्यान, हमें निद्रा से प्राप्त सन्तुष्टि तो देता है, और इससे भी अधिक कुछ देता है। निद्रा में हम पूर्ण विश्राम-आराम प्राप्त करते हैं और ऐसा ही विश्राम हम ध्यान में भी प्राप्त करते हैं। ध्यान में हम स्वयं को शिथिल-विश्रान्त करते हैं, परन्तु यह

शिथिलीकरण अथवा विश्रान्ति की प्रक्रिया, हमारा एक प्रयास नहीं होना चाहिए। हमें स्वयं को विश्रान्त करने के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि हमारा यह प्रयास करना विश्रान्ति नहीं कहलायेगा। विश्रान्ति एक प्रकार की सहजता है, यह हमारी ओर से किया गया कोई प्रयास नहीं है। इसका क्या अभिप्राय है? हम केवल तभी विश्रान्त-शान्त हो सकते हैं, जब हम अपनी आत्मा के समीप जाते हैं। हम जितना अधिक अपनी आत्मा से दूर होते हैं, उतने अधिक तनावपूर्ण हो जाते हैं, उतने अधिक कृत्रिम बनते हैं अर्थात् सहज नहीं रहते हैं। हम जितना अधिक आत्मा के समीप जाते हैं, उतनी अधिक विश्रान्ति प्राप्त करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है, **'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिद् अपि चिन्तयेत्'** (अध्याय ६-२५) — मन को आत्मा में संस्थित करके, अन्य किसी का चिन्तन नहीं करें।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ (अध्याय ६-२६)

ध्यान करते समय मन जब-जब इन्द्रिय-पदार्थों की ओर जाये, उसी क्षण इसे धीरे-धीरे पुनः उस केन्द्र पर लाने का प्रयास करें जहाँ से यह भटका था; जिस प्रकार एक अश्वारोही एक अश्व को उसकी लगाम पकड़ कर धीरे-धीरे नियन्त्रित करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के कुछ चयनित श्लोकों को ध्यान का विषय बनाया जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रत्येक साधक की रुचि के अनुरूप श्लोक हैं। एक भक्त, एक ज्ञानी एवं एक राज योगी के लिए भिन्न-भिन्न अध्याय हैं। राज योगी श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकते हैं, क्योंकि इसमें ध्यान की राजयोगिक विधि का वर्णन है। ग्यारहवाँ एवं बारहवाँ अध्याय क्रमशः परा एवं अपरा कोटि के भक्तों के लिए है। जो परा-भक्त हैं, वे ग्यारहवें अध्याय की भव्यता का आनन्द लेने में समर्थ होंगे। हम परा-भक्त नहीं हैं, हम सब सामान्य कोटि के भक्त हैं। मैं ग्यारहवें अध्याय में वर्णित उच्च कोटि की भक्ति का उल्लेख कर रहा हूँ। बारहवें अध्याय में भक्ति

की गौण अपेक्षाओं-योग्यताओं का वर्णन किया गया है। जो साधक इस जगत् में दिव्य-योग के रूप में कर्म करना चाहते हैं, वे दूसरे एवं तीसरे अध्याय से लाभान्वित होंगे; तथा ज्ञानयोगी तेरहवें अध्याय एवं अठारहवें अध्याय के भी कुछ श्लोकों से लाभान्वित होंगे।

प्रत्येक साधक ध्यान के लिए श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् एवं अपने किसी अन्य प्रिय ग्रन्थ के श्लोकों अथवा गद्यांशो का चयन कर सकता है। ध्यान का मुख्य विषय आत्म-नियन्त्रण एवं भगवान् की विद्यमानता के प्रति सतत जाग्रति है। ध्यान में दो प्रक्रियाएँ समाहित हैं—पहली आत्म-नियन्त्रण एवं दूसरी भगवान् की नित्य विद्यमानता के प्रति जाग्रति। ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं। ऐसा नहीं है कि इसमें एक प्रक्रिया पहले सम्पन्न होती है और दूसरी उसका अनुगमन करती है। हम स्वयं पर नियन्त्रण रखते हैं, तथा साथ ही भगवान् की नित्य सन्निधि, उनकी नित्य विद्यमानता के प्रति जागरूकता बनाये रखते हैं। यही ध्यान है क्योंकि जब हम भगवान् की विद्यमानता के प्रति जाग्रति को बनाये रखते हैं, तो इन्द्रियाँ स्वतः ही नियन्त्रित हो जाती हैं; और इसी प्रकार जब इन्द्रियाँ नियन्त्रित होती हैं, तो भगवान् की नित्य सन्निधि के प्रति जागरूक रहना सरल हो जाता है। इसलिए, ध्यान में ये दो कार्य होने चाहिए—इन्द्रियों पर नियन्त्रण एवं अपने चयनित मार्ग के अनुसार भगवान् के विषय में अपनी अवधारणा के अनुरूप उनकी विद्यमानता अनुभव करने का प्रयास। कर्म योग, भक्ति योग, राज योग एवं ज्ञान योग—ये ध्यान की मुख्य विधियाँ हैं।

इन सब ध्यान-विधियों में एक बात समान है जिसका मैं पूर्वतः उल्लेख कर चुका हूँ तथा जिसे स्मरण रखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; वह है—आत्म-एकीकरण की मनोवैज्ञानिक तकनीक, केवल यही हमें मानसिक-मनोवैज्ञानिक शक्ति प्रदान करेगी। बाह्य जगत् के समस्त वस्तु-पदार्थ हमारी ऊर्जा, हमारी शक्ति को ले लेते हैं अर्थात् इसका अपव्यय करवाते हैं। आप स्वयं को यह सुझाव दें, "अब मैं अपनी ऊर्जा-शक्ति को अपनी ओर वापिस ला रहा हूँ। मैंने अपनी समस्त

ऊर्जा पुनः प्राप्त कर ली है। मैंने जिस ऊर्जा अथवा शक्ति को खोया था, वह अब मेरे पास पुनः आ रही है।" **पुनर्मामेतु इन्द्रियं**—यह एक मन्त्र है जिसका अर्थ है—"मेरी इन्द्रिय-शक्ति, पुनः मेरे पास आओ। अपनी बाल्यावस्था से मैंने जितनी ऊर्जा को खोया है, वह समस्त ऊर्जा मुझे पुनः प्राप्त हो।" यह कोई मूर्खतापूर्ण कथन नहीं है अपितु ऊर्जा एवं शक्ति के विकास तथा उनके पुनः लौटने हेतु एक वास्तविक सुझाव है। "मैंने अनुचित विचार एवं अनुचित आचरण द्वारा जिन शक्तियों एवं ऊर्जा को खोया है, वे मेरे पास पुनः आयें।"

कुछ क्षणों के लिए 'ॐ' का उच्चारण करें, और कहें, "मेरी समस्त ऊर्जा मुझे पुनः प्राप्त हो।" यह चिन्तन करते हुए पुनः 'ॐ' का उच्चारण करें, "भगवान् ऊर्जा के स्रोत हैं। वे ऊर्जा के अक्षय स्रोत हैं। मैं अपनी ऊर्जा कैसे खो सकता हूँ? यह यहीं मेरे पास है। मैंने केवल इसे विस्मृत कर दिया है। समस्त ऊर्जा मेरे पास लौट आयी है। मैं नैतिक रूप से पवित्र, बौद्धिक रूप से प्रखर, भावनात्मक रूप से स्थिर, मनोवैज्ञानिक रूप से सन्तुलित तथा आध्यात्मिक रूप से मुमुक्षायुक्त साधक हूँ। मैं गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज का विनीत अनुयायी हूँ। मुझे उनके आशीर्वाद प्राप्त हों। भगवान् के कृपा-कटाक्ष मुझ पर हों। मैं आध्यात्मिक पथ पर चलने वाला दीन बालक हूँ। मैंने पूर्व में बहुत त्रुटियाँ-गलतियाँ की हैं, मैं आज भी अनेक त्रुटियाँ कर रहा हूँ तथा भविष्य में भी अज्ञान के कारण मैं वही त्रुटियाँ पुनः कर सकता हूँ। भगवान् मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान करें; गुरुदेव मुझ पर निरन्तर दृष्टि रखें।" ये प्रार्थनाएँ हमारे हृदय में सतत चलती रहनी चाहिए, और हमें ईमानदारीपूर्वक विनम्र होना चाहिए। हमारी विनम्रता सच्ची होनी चाहिए; हमारी विनीतता, अच्छाई, पवित्रता एवं पश्चात्ताप सच्चे होने चाहिए। यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। पूर्व में की गयी त्रुटियों के लिए पश्चात्ताप करें तथा उन्हें पुनः नहीं करने का दृढ़ संकल्प लें।

श्री गुरुदेव ने अपनी पुस्तकों यथा 'साधना' 'श्योर वेज फॉर सक्सेस इन लाइफ एण्ड गॉड-रिअलाइजेशन', 'कान्क्वेस्ट ऑफ

माइंड', 'प्रेक्टिस ऑफ योग' में अन्य अनेक साधनों का वर्णन किया है; हमें इन पुस्तकों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। ध्यान एवं आध्यात्मिक जीवन के आकांक्षी साधक को इन पुस्तकों का गहन स्वाध्याय करना चाहिए। इन साधनों द्वारा, हमें स्वयं को पवित्र बनाना चाहिए। भूतकाल की त्रुटियों के लिए पश्चात्ताप करें, तथा सर्वशक्तिमान् प्रभु से उन सब त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना करें। क्षमा-याचना के साथ दृढ़-संकल्प करें कि आप भविष्य में त्रुटियाँ नहीं करेंगे —"मैंने अज्ञान के कारण कुछ त्रुटियाँ की हैं, परन्तु मैं भविष्य में ऐसा नहीं करूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं यह पुनः नहीं करूँगा।" यही भूतकाल में की गयी त्रुटियों-गलतियों हेतु श्रेष्ठतम समाधान है— पश्चात्ताप करना तथा उन गलतियों को पुनः नहीं करना। तब, भगवान् हमें अपना आशीर्वाद प्रदान करेंगे।

इस प्रकार, हम अपनी आत्मा, जो कि हम हैं तथा प्रत्येक अन्य व्यक्ति भी है, के वास्तविक कल्याण हेतु अपने इस विनीत प्रयास से लाभान्वित होने की आशा कर सकते हैं। हमारे करुणामय प्रभु, इन सरल-विनम्र साधकों के कल्याणार्थ की गयी मेरी प्रार्थना को पूर्ण करें।